SYBA

पद्य

१) अध्याय १५ - पुरुषोत्तम योग

(संसार रूपी वृक्ष का वर्णन)

श्रीभगवानुवाच ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ (१)

भावार्थ : श्री भगवान ने कहा - हे अर्जुन! इस संसार को अविनाशी वृक्ष कहा गया है, जिसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं और शाखाएँ नीचे की ओर तथा इस वृक्ष के पत्ते वैदिक स्तोत्र है, जो इस अविनाशी वृक्ष को जानता है वही वेदों का जानकार है। (१)

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ (२)

भावार्थ : इस संसार रूपी वृक्ष की समस्त योनियाँ रूपी शाखाएँ नीचे और ऊपर सभी ओर फ़ैली हुई हैं, इस वृक्ष की शाखाएँ प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा विकसित होती है, इस वृक्ष की इन्द्रिय-विषय रूपी कोंपलें है, इस वृक्ष की जड़ों का विस्तार नीचे की ओर भी होता है जो कि सकाम-कर्म रूप से मनुष्यों के लिये फल रूपी बन्धन उत्पन्न करती हैं। (२)

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल मसङ्गोशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ (३)

भावार्थ : इस संसार रूपी वृक्ष के वास्तविक स्वरूप का अनुभव इस जगत में नहीं

किया जा सकता है क्योंकि न तो इसका आदि है और न ही इसका अन्त है और न ही इसका कोई आधार ही है, अत्यन्त दृड़ता से स्थित इस वृक्ष को केवल वैराग्य रूपी हथियार के द्वारा ही काटा जा सकता है। (३)

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ (४)

भावार्थ : वैराग्य रूपी हथियार से काटने के बाद मनुष्य को उस परम-लक्ष्य (परमात्मा) के मार्ग की खोज करनी चाहिये, जिस मार्ग पर पहुँचा हुआ मनुष्य इस संसार में फिर कभी वापस नही लौटता है, फिर मनुष्य को उस परमात्मा के शरणागत हो जाना चाहिये, जिस परमात्मा से इस आदि-रहित संसार रूपी वृक्ष की उत्पत्ति और विस्तार होता है। (४)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाअध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ (५)

भावार्थ : जो मनुष्य मान-प्रतिष्ठा और मोह से मुक्त है तथा जिसने सांसारिक विषयों में लिप्त मनुष्यों की संगति को त्याग दिया है, जो निरन्तर परमात्म स्वरूप में स्थित रहता है, जिसकी सांसारिक कामनाएँ पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी है और जिसका सुख-दुःख नाम का भेद समाप्त हो गया है ऎसा मोह से मुक्त हुआ मनुष्य उस अविनाशी परम-पद (परम-धाम) को प्राप्त करता हैं। (५)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ (६)

भावार्थ : उस परम-धाम को न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा प्रकाशित करता है और न ही अग्नि प्रकाशित करती है, जहाँ पहुँचकर कोई भी मनुष्य इस संसार में वापस नहीं आता है वही मेरा परम-धाम है। (६)

(जीव और आत्मा का वर्णन)

श्रीभगवानुवाच ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ (७)

भावार्थ : हे अर्जुन! संसार में प्रत्येक शरीर में स्थित जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है, जो कि मन सहित छहों इन्द्रियों के द्वारा प्रकृति के अधीन होकर कार्य करता है। (७)

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ (८)

भावार्थ : शरीर का स्वामी जीवात्मा छहों इन्द्रियों के कार्यों को संस्कार रूप में ग्रहण करके एक शरीर का त्याग करके दूसरे शरीर में उसी प्रकार चला जाता है जिस प्रकार वायु गन्ध को एक स्थान से ग्रहण करके दूसरे स्थान में ले जाती है। (८)

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ (९)

भावार्थ : इस प्रकार दूसरे शरीर में स्थित होकर जीवात्मा कान, आँख, त्वचा, जीभ, नाक और मन की सहायता से ही विषयों का भोग करता है। (९)

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ (१०)

भावार्थ : जीवात्मा शरीर का किस प्रकार त्याग कर सकती है, किस प्रकार शरीर में स्थित रहती है और किस प्रकार प्रकृति के गुणों के अधीन होकर विषयों का भोग करती है, मूर्ख मनुष्य कभी भी इस प्रक्रिया को नहीं देख पाते हैं केवल वही मनुष्य देख पाते हैं जिनकी आँखें ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो गयी हैं। (१०)

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ (११)

भावार्थ : योग के अभ्यास में प्रयत्नशील मनुष्य ही अपने हृदय में स्थित इस आत्मा को देख सकते हैं, किन्तु जो मनुष्य योग के अभ्यास में नहीं लगे हैं ऐसे अज्ञानी प्रयत्न करते रहने पर भी इस आत्मा को नहीं देख पाते हैं। (११)

(जगत में परमात्मा की स्थिति का वर्णन)

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ (१२)

भावार्थ : हे अर्जुन! जो प्रकाश सूर्य में स्थित है जिससे समस्त संसार प्रकाशित होता है, जो प्रकाश चन्द्रमा में स्थित है और जो प्रकाश अग्नि में स्थित है, उस प्रकाश को तू मुझसे ही उत्पन्न समझ। (१२)

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ (१३)

भावार्थ : मैं ही प्रत्येक लोक में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सभी प्राणीयों को धारण करता हूँ और मैं ही चन्द्रमा के रूप से वनस्पतियों में जीवन-रस बनकर समस्त प्राणीयों का पोषण करता हूँ। (१३)

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ (१४)

भावार्थ : मैं ही पाचन-अग्नि के रूप में समस्त जीवों के शरीर में स्थित रहता हूँ, मैं ही प्राण वायु और अपान वायु को संतुलित रखते हुए चार प्रकार के (चबाने वाले, पीने वाले, चाटने वाले और चूसने वाले) अन्नों को पचाता हूँ। (१४)

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टोमत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्योवेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ (१५)

भावार्थ : मैं ही समस्त जीवों के हृदय में आत्मा रूप में स्थित हूँ, मेरे द्वारा ही जीव को वास्तविक स्वरूप की स्मृति, विस्मृति और ज्ञान होता है, मैं ही समस्त वेदों के द्वारा जानने योग्य हूँ, मुझसे ही समस्त वेद उत्पन्न होते हैं और मैं ही समस्त वेदों को जानने वाला हूँ। (१५)

(शरीर, आत्मा और परमात्मा का वर्णन)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ (१६)

भावार्थ : हे अर्जुन! संसार में दो प्रकार के ही जीव होते हैं एक नाशवान (क्षर) और दूसरे अविनाशी (अक्षर), इनमें समस्त जीवों के शरीर तो नाशवान होते हैं और समस्त जीवों की आत्मा को अविनाशी कहा जाता है। (१६)

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ (१७)

भावार्थ : परन्तु इन दोनों के अतिरिक्त एक श्रेष्ठ पुरुष है जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह अविनाशी भगवान तीनों लोकों में प्रवेश करके सभी प्राणीयों का भरण-पोषण करता है। (१७)

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ (१८)

भावार्थ : क्योंकि मैं ही क्षर और अक्षर दोनों से परे स्थित सर्वोत्तम हूँ, इसलिये इसलिए संसार में तथा वेदों में पुरुषोत्तम रूप में विख्यात हूँ। (१८)

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ (१९)

भावार्थ : हे भरतवंशी अर्जुन! जो मनुष्य इस प्रकार मुझको संशय-रहित होकर भगवान रूप से जानता है, वह मनुष्य मुझे ही सब कुछ जानकर सभी प्रकार से मेरी ही भक्ति करता है। (१९)

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ (२०)

भावार्थ : हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह शास्त्रों का अति गोपनीय रहस्य मेरे द्वारा कहा गया है, हे भरतवंशी जो मनुष्य इस परम-ज्ञान को इसी प्रकार से समझता है वह बुद्धिमान हो जाता है और उसके सभी प्रयत्न पूर्ण हो जाते हैं। (२०)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ **इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में पुरुषोत्तम-योग नाम का पंद्रहवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ ॥**

॥ हरिः ॐ तत् सत् ॥

२

४ उत्तिष्ठित उत्तिष्ठित भवानी भारती

भवानी भारती-एक परिचय

भवानी भारती महर्षि अरविन्द द्वारा रचित एक लघु कविता है। इस कविता की रचना सम्भवतः 1904 से 1908 के मध्य की गयी। यह कविता महर्षि अरविन्द द्वारा रचित एकमात्र संस्कृत कविता है। वास्तव में यह कविता देशभक्ति से ओतप्रोत 99 श्लोकों में हैं। इन श्लोकों की रचना इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा और उपजाति छन्द में की गयी है। प्रारम्भ में जब इस कविता को महर्षि अरविन्द ने लिखा तो इसका कोई भी शीर्षक निर्धारित नहीं किया क्योंकि इस कविता को लिखने के बाद उसे फिर से देखने का अवसर ही नहीं मिला। कविता लेखन के तुरन्त बाद कलकत्ता पुलिस के द्वारा 1908 में महर्षि अरविन्द को जेल में डाल दिया गया और उनकी इस कविता को जब्त कर लिया गया। 1985 ई में श्रीअरविन्द आश्रम ने इस कविता को पुनः प्राप्त किया और भवानी भारती के नाम से प्रकाशित कराया।

इस अवसर पर इस कविता के सन्दर्भ में कुछ कहना उपयुक्त होगा। जिस समय समस्त भारतीय अपने सांसारिक सुखों का उपभोग करने में व्यस्त थे। उस समय हमारी भारत

माता को विदेशियों ने अपने क्रूर हाथों से जकड़ रखा था। ये विदेशी हमारी भारत माता का रक्त पी रहे थे। यहाँ पर कवि के कहने का तात्पर्य है कि भारत में रहने वाली प्रत्येक जाति अनुभव करने लगी थी कि इस परिस्थिति में वह अपनी भारत माता की सहायता करने में असमर्थ है फिर भी वे सब चैन की नींद सो रहे हैं। उसी समय कवि को उसकी अन्तरात्मा की आवाज सुनाई पड़ी। उसकी नींद उचट गयी। अचानक वह देखता है कि भारत माता काली के रूप में उसके पीछे खड़ी है।

यहाँ पर उपस्थित काली का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि काली माँ के गले में नरमुण्डों की माला पड़ी है, उसकी कमर में मानवों की नरमुण्डों की जंजीर पड़ी है, वह भूख से तड़प रही है, वह असहाय अवस्था में है, वह डरी हुयी है, वह नग्नावस्था में दृष्टिगोचर है। वह पूरी तरह से कालिमा से भरी हुई है। उसके केश उसकी पीठ पर बिखरे हुये हैं। वह डरावनी सी दिख रही थी। उसकी आवाज़ में बिजली जैसी कड़क थी। उसका डरावना स्वरूप यह बता रहा था कि वह भारत माता है। यह उन बच्चों की माँ है जो जीवन -मरण से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। वह उनकी रक्षा करने के लिये अपने बच्चों का आह्वाहन करती है। वह उन्हें उनके गौरवशाली अतीत के प्रति जागरूक करती है। वह उन्हें बताती है कि भारत देश किसी समय हजारों सूर्य की चमक से इस धरती पर चमक रहा था ऋषियों के ज्ञान और तपस्या से पवित्र था। ऐसे वीर सन्तानों से परिपूर्ण थी जिन्होंने अपने शत्रुओं के रक्त से इस धरती को सींचा था। आज वही भारत माता बहुत दुखी है कि उसकी सन्तानें आज कायर बन गयीं है आज वही भारत माता अपनी सन्तानों को नापसंद करती है और उन्हें पहले की तरह जागरूक बनने और संघर्ष करने के लिये कहती है।अपनी माँ की यह आवाज सुन कर कवि अपना घर-बार रिश्ते नाते सब कुछ छोड़कर निकल पड़ता है। वह देखता है कि उसकी माँ शक्तिशाली और निर्दयी शत्रुओं से घिरी हुयी है, वे अपने बच्चों को पालने के लिये भारत माँ का खून चूस रहे हैं, वे बहुत विशाल और डरावने दिखते हैं, वे अपनी शक्ति के घमंड से भरे हुये हैं, वे सत्य के विरोधी और असत्य के समर्थक हैं, यह दृश्य देखकर कवि का हृदय क्रोध की अग्नि से जलने लगता है उसी समय माँ उसके सामने प्रकट होती है। वह अँधेरी रात्रि के समान डरी हुयी है, उसकी आवाज से धरती हिल उठती है, समुद्र में विक्षोभ होता है, स्वर्ग में उसकी आवाज से बिजली जैसी कौंध जाती है| वह क्रोध से जलने लगती है। क्रोधावेश में वह अपने शस्त्रों को उठाती है। उसके धनुष से अग्नि निकल रही है। दहाड़ते हुये वह युद्ध

क्षेत्र में शत्रुओं पर टूट पड़ती है। सम्पूर्ण धरती रक्त से भर जाती है। तभी कवि देखता है कि उगता हुआ सूरज अपनी चमक से अंधकार को काटता हुआ चमक रहा है। दूर पूर्व दिशा में सफ़ेद चमकती हुयी किरण किसी स्त्री के रूप में दिखाई दे रही है। उत्साह, चमक एवं आशा की किरण तथा हजारों सूर्यों का प्रकाश अपने प्रकाश से प्रकाशित कर रहा है। सभी देव वहाँ उपस्थित हैं| उस भारत माता की प्रशंसा के गीत गा रहे हैं, चिड़ियाँ फिर से चहचहाने लगीं हैं, सभी लोग उसके सामने उसकी प्रशंसा के गीत गाने लगे। हिमालय पर योगियों ने फिर से ध्यान करना शुरू कर दिया है, प्रसन्नता से उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। आर्यों की माँ भारती, पालनकर्त्री ,परमसत्ता, दैवीशक्ति की सभी प्रार्थना करते हैं। वे उसकी प्रार्थना काली के समान दयावान अन्नपूर्णा, प्रेम की अधिष्ठात्री राधा के रूप में सावित्री के रूप में, दशभुजाधारी दुर्गा के रूप में तथा असीम शक्ति से परिपूर्ण हजारों भुजा वाली माँ के रूप में करते हैं। ऐसी स्थिति में कवि को जंगल में वेदों की ध्वनि सुनाई पड़ती है जैसा कि प्राचीन समय में होता था। आज साक्षात् लक्ष्मी स्वयं अपनी मधुर मुस्कान सहित सारे भारतीयों के साथ उपस्थित हैं। आज सारा संसार माँ के साथ है और सभी उस माँ भारती के गीत गा रहे हैं। हे प्रीति, दया,धैर्य, अदम्यशौर्य, श्रद्धा,क्षमा, विविध विद्याओं को जानने वाली अनन्तरूपा देवी तुम प्रसन्न हो और भारत के जन-जन के मन में तुम स्थायी रूप से निवास करो। हे माँ तुम अपने तेज से यहाँ की समस्त नदियों और हिमालय को प्रकाशित कर दो, हे अजर-अमर चिर-कीर्ति शालिनी, महिमामयी प्रतापिनी माँ तुम इस आर्यभूमि भारत में हम सब के कल्याण के लिये यहीं पर निवास करो और हमें शुभ आशीर्वाद प्रदान करो । हे माँ भवानी भारती तुम्हारी जय हो।

1. सान्द्रं तमिस्त्रावृतः .... भा अन्वयः - रजन्याम् गूढा अरिभिः विनष्टा भारतानाम् माता सान्द्रम् तमित्रा आवृतम् आर्तम् अन्धम् आर्यखण्डम् तत् भारतम विलोक्य भशं क्रन्दति ॥

कठिन-शब्दार्थ :

- रजन्याम् = रात्रि में।
- गूढा = डूबी हुयी।
- अरिभिः = शत्रुओं से।

- सान्द्रम् = सघन।
- तमिस्रा = अन्धकार से,
- आवृतम् = ढका हुआ।
- आर्तम् = दुःखी, पीड़ित।
- विलोक्य = देखकर।
- भृशं = बहुत अधिक।
- क्रन्दति = रोती है, विलाप करती है।

प्रसंग - यह श्लोक हमारी पाठ्यपुस्तक 'शाश्वती' के प्रथम भाग के 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ से अवतरित है। मूलतः यह पाठ महर्षि अरविन्द विरचित खण्डकाव्य 'भवानी भारती' से संकलित किया गया है। इसमें भारत माता अपने भारत देश की दुर्दशा को देखकर क्रन्दन करती है-यह चित्रित किया गया है -

रतानाम्॥1॥

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - रात्रि के समय छिपी हुई, शत्रुओं से विनष्ट भारत माता गहन अन्धकार से ढके हुये, दुःखी अन्धे से हुये आर्यखण्ड उस भारत को देखकर अत्यधिक विलाप कर रही है।

विशेष - यहाँ भारत देश की परतन्त्रता काल का दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया गया है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्गः - अयं पद्यांश: अस्माकं पाठ्यपुस्तक 'शाश्वती' प्रथम भागस्य 'सन्तति प्रबोधनम्' पाठात् अवतरितः। मूलतः अयं पाठः महर्षि अरविन्द प्रणीत 'भवानीभारती' खण्डकाव्यात् संकलितः। अस्मिन् पद्ये भारतजनन्याः वर्णनं कृतम्

संस्कृत-व्याख्या - सान्द्रं = अन्द्रेण, सह = सघनमित्यर्थः, तमिस्त्रावृतम् = तिमिरावृतम् आर्तम् = पीडितं, अन्धं = अन्धकारयुक्तं, तत् भारतमार्यखण्डम् = भारत नाम्नः आर्यखण्डम्, विलोक्य = दृष्ट्वा, गूढा = निक्षिप्ता, रजन्याम् = रात्रौ, अरिभिः = शत्रुभिः, विनष्टा = विनाशं प्राप्ता, भारतनाम् = भारतीयानाम्, माता = भारत-माता इत्यर्थः भ्रशं = अत्यधिकं, क्रन्दति = विलपति, क्रन्दनं करोति।

विशेषः -

1. भारतमाता स्वदेशवासिनां दयनीयां स्थितिं दृष्ट्वा भ्रशं क्रन्दति-इत्यत्र प्रतिपादितम्।
2. अस्मिन् पद्ये उपजातिवृत्तं वर्तते।
3. व्याकरण-विलोक्य-वि + लोक् + ल्यप्। विनष्टा-वि + नश् + क्त + टाप्। गूढा-गुह् + क्त + टाप्। अरिभिर्विनष्टा-अरिभिः + विनष्टा (विसर्ग सन्धि)। तमिस्रावृत्तम्-तमिनेण-आवृतम् (तृतीया तत्पु.)। सान्द्रम्-सह अन्द्रेण।

2. सनातनान्याहवय .... सुप्तसिंहाः॥2॥

अन्वयः - भो सुप्तसिंहाः! युद्धाय उत्तिष्ठत उत्तिष्ठत। (अहं) जागृता अस्मि, धनुः क्व, खड्गः क्व, भारतानां सनातनानि कुलानि आह्वय, भीः नो (अस्तु), जयः अस्तु॥

कठिन-शब्दार्थ :

- सुप्तसिंहा = सोये हुये शेरों।
- उत्तिष्ठत = उठो।
- जागृता अस्मि = (मैं) जाग गई हूँ।
- खड्गः = तलवार।
- सनातनानि = पुरातन, पुराने।
- आह्वय = बुलाओ।
- भीः = भय, डर।

प्रसंग - यह श्लोक 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ से लिया गया है। यहाँ भारत माता को महाकाली के रूप में चित्रित किया गया है। उसके माध्यम से सोये हुये भारतीयों को जागृत करने की प्रेरणा दी गई है -

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - अरे सोये हुये शेरो! युद्ध करने के लिए उठो, उठो। मैं जाग गई हूँ। धनुष कहाँ है? तलवार के सनातन कलों को बलाओ, उनका आहवान करो। भयभीत मत हो (डरो मत), तुम्हारी विजय हो। विशेष - यहाँ शत्रुओं से भयभीत न होकर पराक्रमपूर्वक उनका मुकाबला करने हेतु भारत के लोगों का आहवान किया गया है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्ग - अयं पद्यः अस्माकं पाठ्यपुस्तकस्य 'सन्तति प्रबोधनम्' इति पाठात् उद्धृतः। मूलतः अयं पाठः महर्षि अरविन्द विरचितात् 'भवानी भारती' इति खण्डकाव्यात् संकलितः। अस्मिन् पद्ये भारतमाता स्वकीयान् वीर पुत्रान् युद्धाय आह्वानं करोति सनातनकुलानि च आमन्त्रयति

संस्कृत-व्याख्या - भो सुप्तसिंहाः = रे शयिताः केसरिणः। युद्धाय = समराय, उतिष्ठत उतिष्ठत् = उत्थानं कुरुत, उत्थानं कुरुत, (अहं = भारत माता) जागृता = त्यक्तनिन्द्रा अस्मि, धनु : वच = तव शरासनः कुत्र वर्तते? खड्गः क्व = असि कुत्रास्ति? भारतानां = भारतीयानां, सनातनानि = पुरातनानि, कुलानि = वंशानि, आहवय = आकारथ, आमन्त्रय। भी: = भयः, नो = न, अस्तु = भवतु। जयः = विजयः, अस्तु = भवतु।

विशेषः -

1. अस्मिन् पद्ये उपजातिवृत्तः।
2. व्याकरणम्-सुप्तसिंहाः-सुप्तः च असौ सिंहः सुप्तसिंहः ते सुप्तसिंहाः (कर्मधारय)। जागृतास्मि-जागृता + अस्मि (दीर्घ सन्धि)। सनातना न्याह्वय-सनातनानि + आह्वय (यण् सन्धि)। जयोऽस्तु-जयः अस्तु (पूर्वरूप)।

3. माताऽस्मि भो! ....नाशयितुं यमो वा॥3॥

अन्वयः - भोः पुत्रक! (अहं) सनातनानां त्रिदशप्रियाणाम् भारतानाम् माता अस्मि, पुत्र! यान् विपक्षः विधिः नाशयितुं न शक्तः, कालः यमः वा अपि नो (नाशयितुं शक्तः)॥

कठिन-शब्दार्थ :

- त्रिदशप्रियाणाम् = देवताओं के प्रियों का।
- विधिः = शासन।
- नाशयितुम् = नष्ट करने के लिए।
- शक्तः = समर्थ।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ से अवतरित है। इस श्लोक में महाकाली के रूप में भारत माता कहती है कि भारतीयों को कोई भी नहीं मार सकता है

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - हे पुत्र! मैं सनातन, देवताओं के प्रिय भारतवासियों की माता हूँ। पुत्र ! जिन भारतीयों को शत्रु पक्ष का शासन नष्ट करने में समर्थ नहीं है, उन्हें काल अथवा यम भी विनष्ट करने में समर्थ नहीं है।

विशेष - यहाँ भारतीयों को देवताओं का प्रिय बतलाते हुए उनके बल एवं पराक्रम को प्रकट किया गया है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्गः - अयं पद्यांशः अस्माकं पाठ्यपुस्तक 'शाश्वती' प्रथम भागस्य 'सन्तति प्रबोधनम्' पाठात् अवतरितः। मूलतः अयं पाठः महर्षि अरविन्द प्रणीत 'भवानी भारती' खण्डकाव्यात् संकलितः। अस्मिन् श्लोके महाकाली रूपे भारतमाता कथयति यत् भारतीयान् कोऽपि हन्तुं न शक्नोति -

संस्कृत-व्याख्या - भो पुत्रक! = हे पुत्र ! (अहं) सनातनानाम् = शाश्वतानाम् सनातन धर्मानुयायिनाम् वा, त्रिदशप्रियाणाम् = देव-प्रियाणाम्, भारतानाम् = भारतीयानाम्, माताऽस्मि = जननी अस्मि। पुत्र! = हे तात! यान् = भारतीयान्, विपक्षः विधिः = शत्रोः शासनम्, नाशयितुं = विनाशयितुं न शक्तः = न समर्थः (तान् भारतीयान्) कालः = यमः, भयः = भीतिः, अपि नाशयितुं समर्थो नास्ति।

विशेषः -

1. भारतमातुः कथनमस्ति यत् तस्याः पुत्राः अजेयाः सन्ति। तान् कोऽपि नाशयितु समर्थो नास्ति।
2. अत्र उपजाति छन्दः वर्तते।

4. ते ब्रह्मचर्येण .... शुशुभुर्धरित्र्याम्॥4॥

अन्वयः - ते ब्रह्मचर्येण, ते ज्ञानेन भीमतपोभिः विशुद्धवीर्या : आर्या : ते भासुराः सहस्रसूर्याः इव समृद्धिमत्यां धरित्र्याम् शुशुभुः॥

कठिन-शब्दार्थ :

- भीमतपोभिः = अत्यधिक परिश्रमों से।
- विशुद्धवीर्याः = अत्यधिक पराक्रम वाले।
- भासुराः = दीप्तिमान।

- सहस्त्रसर्याः = हजारों सर्यों की तरह।
- धरित्र्याम = पृथ्वी पर।
- शशभः = सुशं भित हये।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ से अवतरित है। मूलतः यह पाठ महर्षि अरविन्द कृत 'भवानी भारती' खण्डकाव्य से संकलित किया गया है। इस श्लोक में आर्यों की दीप्तिमत्ता का चित्रण किया गया है

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - वे (भारतीय) ब्रह्मचर्य से, ज्ञान से, अत्यधिक परिश्रम से, अत्यधिक पराक्रम वाले श्रेष्ठ दीप्तिमान हजारों सूर्यों की भाँति समृद्धिशाली इस पृथ्वी पर सुशोभित हुये।

विशेष - यहाँ भारतीय लोगों के वैशिष्ट्य को दर्शाया गया है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्गः - अयं श्लोकः 'सन्ततिप्रबोधनम्' शीर्षक पाठात् अवतरितः। मूलतः अयं पाठः महर्षि अरविन्द विरचित 'भवानी भारती' खण्डकाव्यात् संकलितः। अस्मिन् श्लोके आर्याणाम् दीप्तिमत्तायाः चित्रणं कृतम्

संस्कृत-व्याख्या - ते = भारतीयाः, ब्रह्मचर्येण = ब्रह्मचर्यव्रतेन, ज्ञानेन = स्वकीय ज्ञानेन, भीमतपोभिः = अतिपरिश्रमेण, विशुद्धवीर्याः = परिष्कृत पराक्रमाः, आर्याः = श्रेष्ठाः ते, भासुराः = भासमानाः = सहस्रसूर्या इव = सहस्रभानवः यथा, समृद्धिमत्यां = समृद्धिशालिन्यां, धरित्र्याम् = पृथिव्याम्, शुशुभुः = शोभायमानाः जाताः।

विशेषः -

1. सहस्त्रसूर्या इव-अत्रोपमाऽलंकारः।
2. छन्द उपजातिः।
3. व्याकरणम् -विशुद्धवीर्या :-विशुद्धं वीर्यं येषां ते (ब. व्री.)। भीमतपोभिः-भीमैः तपोभिः (तृतीया तत्पु.)। समृद्धिः- सम् + ऋध् + क्तिन्। भासुराः-भास् + घुरच् प्रत्यय। समृद्धिमत्याम-समृद्धि + मतुप् + ङीप् सप्तमी ए. व.। शुशुभुः-शुभ् लिट लकार प्र. पु. बहुवचन।।

5. उत्तिष्ठ भो .... दहन्नटस्व॥5॥

अन्वयः - भोः ! उत्तिष्ठ, जागर्हि, अग्नीन् सर्जय, हि (त्वं) परस्य शौरेः साक्षात् तेजः असि, वक्षः स्थितेन एव सनातनेन हुताशेन शत्रून् दहन नटस्व।।

कठिन-शब्दार्थ : जागर्हि = जागो। सर्जय = उत्पन्न करो। शौरेः = कृष्ण के। हुताशेन = अग्नि के द्वारा। नटस्व = नष्ट करो, भगा दो।

प्रसंग - यह श्लोक 'शाश्वती' प्रथम भाग के सप्तम पाठ 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ से लिया गया है। भारतमाता को महाकाली के रूप में कवि ने चित्रित किया है तथा भारतवासियों को प्रेरित किया है कि वे उठे, जागें

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - हे भारतीयो ! उठो, जागो, अग्नि को पैदा करो क्योंकि तुम शत्रु संहारक कृष्ण के साक्षात् तेज हो। वक्षस्थल पर स्थित ही सनातन अग्नि के द्वारा शत्रुओं को जलाते हुये उन्हें नष्ट करो। उन्हें यहाँ से भगा दो।

विशेष - यहाँ भारतीय लोगों को शत्रु-संहारक श्रीकृष्ण के समान तेजस्वी बतलाते हुए उन्हें अपने तेज द्वारा शत्रुओं को नष्ट करने हेतु प्रेरित किया गया है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्गः - अयं श्लोकः अस्माकं पाठ्यपुस्तक 'शाश्वती' प्रथमभागस्य 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठात् उद्धृतोऽस्ति। अस्मिन् श्लोकं भारतमातरम् महाकालीरूपे कविता चित्रितम् भारतीयान् च प्रेरितं यत् ते उत्तिष्ठन्तु

संस्कृत-व्याख्या - भोः = हे भारतीयाः! उत्तिष्ठ, जागर्हि अग्निम = अनलं, सर्जय = उत्पन्नं करु। हि = यतो हि (त्वं) परस्य = शत्रोः संहारकः शौरेः = कृष्णस्य, साक्षात् तेजः असि = पराक्रमोऽसि। वक्षः स्थितेन = वक्षःस्थल विद्यमानेन एव, सनातनेन हुताशेन = अग्निना, शत्रून् = रिपून्, दहन् = ज्वलयन्, नटस्व = विनष्टं कुरु। तान् अत्रतः पलायनं करोतु।

विशेषः -

1. अस्मिन् पद्ये कविना भारतीयाः कृष्णस्य तेजः निगदितम्।
2. अस्मिन् पद्ये उपजाति वृत्तं वर्तते।

3. व्याकरणम् - शौरेः - शूर + इञ्। कृष्णस्य शौरि (ष. ए. व.)। सर्जय-सृज् धातु लोट् लकार म. पु. एकवचन। हुताशेन-हुतं अश्नाति, यः सः तेन। दहन्-दह् + शतृ। साक्षाद्धि-साक्षात् + हि (हल् सन्धि)। तेजोऽसि-तेजः + असि (पूर्व रूप)।

6. अस्त्येव लोहं .... परहा भवार्यः॥6॥

अन्वयः - लोहं निशितः च खङ्ग अस्ति एव, इह क्रूरा मत्ता शतघ्नी नदति। (त्वं) कथं निरस्त्रः असि? शेषे मृतः असि, स्वजातिम् रक्ष, परहा आर्यः भव॥

कठिन-शब्दार्थ :

- निशितः = पैना किया हुआ।
- क्रूरा = भयंकर।
- मत्ता = मदमस्त।
- शतघ्नी = तोप, बन्दूक।
- नदति = बोलती है।
- निरस्त्रः = अस्त्रों से रहित।
- परहा = शत्रुओं को मारने वाला।
- रक्ष = रक्षा करो।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत श्लोक में कवि का कथन है कि तुम्हारे पास अस्त्र हैं, अतः शत्रुघाती श्रेष्ठ आर्य बनकर अपनी जाति की रक्षा करो

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - तुम्हारे लोहे से बने हुये अस्त्र हैं, पैनी की गई तलवार है (साथ ही) यहाँ भयंकर मतवाली तोप बोल रही है (तोप गरज रही है)। (तुम) कैसे शस्त्रहीन हो? मरे हुये के तुल्य हो, सो रहे हो। अपनी जाति की रक्षा करो तथा शत्रुओं को मारने वाले आर्य श्रेष्ठ बनो।

विशेष - यहाँ परतन्त्रता काल में असहाय भारतीय लोगों के भीतर छिपे हुए पराक्रम का स्मरण कराते हुए उन्हें शत्रुओं का संहार करने की प्रेरणा दी गई है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्गः - अयं श्लोकः अस्माकं पाठ्यपुस्तक 'शाश्वती' प्रथमभागस्य 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठात् उद्धृतोऽस्ति। अस्मिन् श्लोके कवेः कथनमस्ति यत् हे भारतीयाः। तव समीपे अस्त्राणि सन्ति, अतः शत्रुघाती श्रेष्ठ आर्यो भूत्वा स्व जातिं रक्ष

संस्कृत-व्याख्या - तव समीपे लोहं निशितः = आयस निर्मितं उद्दीप्तः, खड्ग अस्ति = कवालः वर्तते, इह = अत्र च क्रूरा = निष्ठुरा, मत्ताः = प्रमत्ताः, शत्रघ्नी = तोपनामाख्यं अस्त्रम्, नदति = गर्जति। (त्वं) कथं = कस्मात् कारणात् निरस्रः = शस्त्र विहीनः असि? शेषे मृतः असि = मृततुल्योऽसि। स्वजातिम् = स्वबन्धुबान्धवान्, रक्ष = तेषां रक्षां कुरु। परहा = परान् हन्ति इति परहा, शत्रुसंहारकः = आर्यः भव = श्रेष्ठ आर्यो भव।।

विशेषः -

1. अस्मिन् पद्ये उपजाति वृत्तं वर्तते।
2. व्याकरणम्-अस्त्येव-अस्ति + एव (यण् सन्धि)। शतघ्नी-शतं हन्ति या सा (बहुव्रीहि)। नदतीह-नदति + इह (दीर्घ सन्धि)। मत्ता-मद् + क्त + टाप्। परहा-परान् हन्ति यः सः (बहुव्रीहि)। जातिम्-जन् + क्तिन्।

7. भो भो अवन्त्यो .... पञ्चनदेषु शूराः॥7॥

अन्वयः - भोः! भोः! अवन्त्यः, मगधाः च, बङ्गाः, अङ्गाः, कलिङ्गाः सिन्धवः च, भोः दाक्षिणात्याः। आन्ध्रचोलाः! शृणुत, ये पञ्चनदेषु शूराः (सन्ति) (ते अपि) शृण्वन्तु ॥

कठिन-शब्दार्थ :

- अवन्त्यः = अवन्ति प्रदेशवासियो।
- मगधाः = मगध में रहने वाले।
- सिन्धवः = सिन्धु प्रदेशवासियो।
- पञ्चनदेषु = पञ्जाब में रहने वालो।
- शूराः = वीर।
- शृण्वन्तु = सुनें।
- आन्ध्रचोलाः = आन्ध्र प्रदेश तथा चोल प्रदेश में रहने वालो।

प्रसंग - प्रस्तुत श्लोक 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत पद्य में कवि ने समस्त देशवासियों को सम्बोधित करते हुये कहा है -

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - अरे! अरे! अवन्ति प्रदेश में रहने वालो! तथा मगधवासियो! बंगप्रदेश-वासियो! अंग प्रदेश में रहने वालो ! कलिंग तथा सिन्धु प्रदेशवासियो! हे दक्षिण प्रदेश में रहने वालो! आन्ध्र तथा चोल प्रदेशवासियो! तुम सब सुनो। (साथ ही) जो पंचनद (पंजाब) प्रदेश में रहने वाले वीर हैं, (वे भी) सुनें।

विशेष - यहाँ भारतदेश के विभिन्न प्रदेशों का नामोल्लेख करते हुए सभी को एकतापूर्वक स्वतन्त्रता संग्राम हेतु प्रेरित किया गया है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्ग - पद्योऽयं अस्माकं पाठ्यपुस्तक 'सन्तति-प्रबोधनम्' इति पाठात् उद्धृतः। पाठोऽयं महर्षि अरविन्दस्य भवानी भारती' इति खण्डकाव्यात् संकलितोऽस्ति। अस्मिन् पद्ये भारतमाता देशस्य सर्वेभ्यः प्रदेशवासिभ्यः सन्देशं ददाति

संस्कृत-व्याख्या - भोः ! भोः ! = रे! रे! अवन्त्यः = मालवदेश वासिनः, मगधाः = मगधदेशवासिनः, बङ्गाः = बंगदेशवासिनः, अङ्गाः = अंगदेशवासिनः, कलिङ्गाः = कलिंगदेशवासिनः, सिन्धवः च = सिन्धदेशवासिनः, भोः दाक्षिणात्याः = रे दक्षिण देशवासिनः, आन्ध्राः = आन्ध्रदेशवासिनः, चोला: = तंजोरदेशवासिनः, शृणुत = आकर्णयत। ये पञ्चनदेशु = ये पञ्चाम्बु प्रदेशे, शूराः = वीराः वर्तन्ते, (तेऽपि) शृण्वन्तु = आकर्णयन्तु।।

विशेष -

1. अस्मिन् पद्ये इन्द्रवज्रा छन्दः।
2. पद्येऽस्मिन् 'ग' वर्णस्यावृत्तिः, अत: अनुप्रासोऽलंकारः। .
3. व्याकरणम्-पञ्चनदः-पञ्चानां नदीनां समाहारः (द्विगु)। शृणुतान्ध्रचोला:-शृणुत + आन्ध्रचोलाः (दीर्घ सन्धि)।

8. ये केचिदर्चन्ति .... णुध्वम्॥8॥

अन्वयः - ये केचित् त्रिमूर्तिम् अर्चन्ति, ननु ये मदीयाः यवनाः च एकमूर्तिम् (अर्चन्ति) हि व: माता सर्वान् तनयान् आह्वये। अये शृणुध्वम्। निद्राम् विमुञ्चध्वम्॥

कठिन-शब्दार्थ :

- त्रिमूर्तिम् = त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की मूर्ति को।

- अर्चन्ति = पूजते हैं।
- मदीयाः = मेरे।
- एक मूर्तिम् = एक निराकार परमेश्वर को।
- वः = तुम्हारे।
- तनयान् = पुत्रों को,
- आह्वये = पुकारती हूँ, आह्वान करती हूँ।
- शृणुध्वम् = सुनो।
- विमुञ्चध्वम् = छोड़ो।

प्रसंग - यह 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठ का अन्तिम श्लोक है। इसमें भारत माता सभी उन भारतवासियों को बुलाकर कह रही है, जो परमेश्वर के किसी भी रूप के उपासक हैं -

हिन्दी अनुवाद/व्याख्या - जो कोई त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की मूर्ति को पूजते हैं। निश्चय से जो मेरे यवन, एक निराकार परमेश्वर की अर्चना करते हैं, निश्चय ही सम्पूर्ण पुत्रों को मैं तुम्हारी भारत माता बुला रही हूँ, तुम्हारा आह्वान कर रही हूँ। तुम सब सुनो तथा निद्रा का त्याग करो। खड़े हो जाओ, अब सोने का समय नहीं है।

विशेष - यहाँ भारतमाता के माध्यम से कवि ने सभी भारतीयों का स्वतन्त्रता हेतु आह्वान करके एकता की भावना को प्रकट किया है।

सप्रसङ्ग संस्कृत-व्याख्या -

प्रसङ्गः - अयं 'सन्तति प्रबोधनम्' शीर्षक पाठस्य अन्तिमः श्लोकः वर्तते। अस्मिन् श्लोके भारतमाता तान् सर्वान् भारतीयान् आहवये, ये परमेश्वरस्य कस्यचिदपि रूपस्य उपासकाः सन्ति -

संस्कृत-व्याख्या - ये केचित् = ये केचित् भारतीयाः, त्रिमूर्तिम् = त्रिदेवम्, अर्चन्ति = पूजयन्ति। ननु = निश्चयेन, ये = भारतीयाः मदीयाः = मम, यवनाः = मुस्लिमबन्धवः सन्ति, ते एक मूर्तिम् = निराकार परमेश्वरं, अर्चन्ति = पूजयन्ति। कम्, माता = भारतमाता, सर्वान् = अखिलान्, तनयान् = पुत्रान्, आह्वये = आकारयामि, अये शृणुध्वम् = मम वचनं शृणु। निद्रां विमुञ्चध्वम् = त्यज। उत्तिष्ठत, अयं शयन समयो नास्ति।

विशेषः -

(i) अस्मिन् पद्ये इन्द्रवज्रा छन्दः।

(ii) व्याकरणम्-त्रिमूर्तिम्-तिसृणाम् मूर्तीनाम् समाहारः (द्विगु)। एकमूर्तिः-एक चासौ मूर्तिः (कर्मधारय)। वस्तनयान्-वः + तनयान् (विसर्ग सन्धि)। चैक-च एक (वृद्धि सन्धि)।

<u>गद्य</u>

३. कंकनस्य तु लोभेन -

हितोपदेश - हितोपदेश हा संस्कृतमधील कथांचा संग्रह म्हणता येईल . जगातील प्राचीन कथासंग्रहातील एक ख्यातनाम असणाऱ्या ह्या हितोपदेशात गद्य आणि पद्य या दोन्ही शैलींचा वापर झालेला दिसतो . साधारणतः इ . स . चे बाराव्या शतकात हा ग्रंथ रचला गेला असे मानले जाते . हितोपदेश हा शब्द ' हिताय उपदेशः ' (a benificial advice) किंवा हितः उपदेशः (a friendly or affectionate kind advice) या दोन्ही अर्थांनी स्वीकारला जाऊ शकतो . हितोपदेशाचे पञ्चतंत्रकथांशी साम्य दिसून येते . पञ्चतन्त्राप्रमाणे या कथांतूनही प्राण्याचे मानवाच्या स्वभावाशी साधर्म्य लक्षात घेऊन माणसांच्या स्वभावाचे चित्रण दिसून येते . प्रत्येक कथेतून पुढे येणारे तात्पर्य किंवा शिकवण वाचकाला तात्काळ उमजते . पञ्चतंत्राप्रमाणेच हितोपदेशाची भाषा आकलनास सुलभ असून संस्कृत भाषेच्या प्रारंभिक अभ्यासास पूरक अशी आहे . यातील काही कथा या पञ्चतंत्रकथांशी साम्य दर्शवितात . असेही म्हटले जाते की , हितोपदेशाचा रचनाकार मानला गेलेला नारायण पंडित ह्यास पञ्चतंत्रकथा आवडल्याने त्याने त्या पुनः लिहून काढल्या आणि त्यात आपल्या काही कथांची भर घातली . प्रस्तुत ग्रंथाची सुरुवातही पञ्चतंत्राच्या आरंभाशी साम्य दर्शविणारी आहे . तिथे महिलारोप्य नगरी आणि अमरशक्ति नावाचा राजा होता इथे , हितोपदेशात , पाटलीपुत्र नावाचे नगर आहे . आणि सुदर्शन नावाचा राजा आहे . सहज - सोप्या भाषेत लहान मुले आणि शास्त्राध्ययन करु न शकणारांस जीवनाचे तत्त्वज्ञान आणि नीतिशास्त्र समजावे असा या ग्रंथाचा उद्देश रचनाकार नोंदवितो . प्रस्तुत ग्रंथात चार विभाग करण्यात आहे आहेत . त्यांची नांवे अनुक्रमे - मित्रलाभ , सुहृद्भेद , विग्रह आणि संधि अशी आहेत . आपणास अभ्यासवयाची कथा ही मित्रलाभ ह्या विभागातून घेतली आहे . मित्रलाभ म्हणजे नवे

नवे मित्र जोडणे , मैत्री करणे होय . हितोपदेशाचा रचनाकार म्हणून नारायण पंडित असल्याचे प्रथम डॉ . पीटरसन् यांनी सिद्ध केल्याचे प्रा . एम् . आर् . काळे यांच्या ग्रंथाच्या प्रस्तावनेतून समजते . प्रस्तुत ग्रंथात , ' विष्णुशर्मा कथयति ' , ' विष्णुशर्मोवाच ' अशी विधाने असल्याने तोपर्यंत विष्णुशर्मा या कङ्कणस्य तु लोभेन । २२ संस्कृतार्णव ग्रंथाचे रचनाकार मानले जात होते . परंतु ' नारायणेन प्रचतु रचितः संग्रहोऽ कथानाम् " असे या ग्रंथांचे अंती येत नसल्याने नारायण पंडितच रचनाकार आहेत हे सिद्ध होते . तसेच , श्रीमान् धवलचन्द्र असा उल्लेखही ग्रंथाच्या अंती येतो . हा राजा बंगाल मधे होऊन गेला असे समजते . नारायण पंडित धवलचन्द्रराजाच्या दरबारी राजकवी असावा . या दोघाविषयी फारशी माहिती उपलब्ध होत नाही . हितोपदेशाचे मंगलाचरण हे शिवास उद्देशून असल्याने नारायण पंडित हा शैव होता असा अभ्यासकांचा कयास आहे . हितोपदेशाची अनेक भाषांत भाषांतरे झालेली आहेत . अकबराने तत्कालीन भाषांत याचे भाषांतर करावयास सांगितल्याचे समजते . आपला मंत्री अबु फाझी यांस त्याने योग्य स्पष्टीकरणासह हा ग्रंथ पुनश्च प्रकाशित करावयाचा आदेश दिला होता . चार्ल्स विल्किन्स (Charles Wilkins) यांनी प्रथमतः इंग्रजीत या ग्रंथाचे भाषांतर केले आहे . सर एड्विन अर्नाल्ड (Sir Edwin Arnold) यांनी १८६१ मधे प्रस्तुत ग्रंथाचे इंग्रजीत भाषांतर केले अशीही नोंद आढळते . कथा - दक्षिणारण्ये एकः वृद्धव्याघ्रः निवसति स्म । एकदा सःस्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे उपविश्य ब्रूते , " भोः भोः पान्थाः इदं सुवर्णकङ्कणं गृह्यताम् । " ततो लोभाकृष्टेन केनचित्पान्थेनालोचितम् , भाग्येनैतत्संभवति । किं त्वस्मिन्नात्मसंदेहे प्रवृत्तिर्न विधेया । यतः । अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा ॥ यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे ॥१ ॥ किंन्तु सर्वत्रार्थाजने प्रवृत्तिःसंदेह एव । तथा चोक्तम् न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति । संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ॥ २ ॥ तन्त्रिरूपयामि तावत् । प्रकाशं ब्रूते , " कुत्र तव कङ्कणम् । ” व्याघ्रो हस्तं प्रसार्य दर्शयति । पान्थोऽवदत् , “ कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः । " व्याघ्र उवाच , " शृणु रे पान्थ प्रागेव यौवनदशायामतिदुर्वृत्तः आसम् । अनेकगोमानुषाणां वधान्मे पुत्रा मृता दाराश्च । वंशहीनश्चाहम् ततः केनचिद्धार्मिकेणाहमादिष्टः - दानधर्मादिकं चरतु भवान् इति । तदुपदेशादिदानीमहं स्नानशीलो दाता वृद्धो गलितनखदन्तो न कथं विश्वासभूमिः । यतः संस्कृतार्णवः इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिःक्षमा । अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥ ३ ॥ तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते । २३ । कङ्कणस्य तु लोभेन उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति ॥ ४ ॥ ममचेतावाँल्लो भविरहो येनस्वहस्तस्थमपिसुवर्णकङ्कणम्यस्मैकस्मैचिद्दातुमिच्छामि । तथापि व्याघ्रो मानुषं खादतीति

लोकापवादो दुर्निवारःयतः लोकः गतानुगतिको सन्ति । मया च धर्मशास्त्राण्यधीतानि । शृणु मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्ते भोजनं तथा । दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ॥५ ॥ अपरञ्च यथा आत्मनः प्राणा अभीष्टाः तथा भूतानामपि इति अवधार्य साधवः आत्मौपमन्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति । प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये आत्मौपमन्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति । तथा च यः मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् आत्मवत्सर्वभूतेषु पश्यति स एव पण्डितःनिश्चयेन । त्वं चातीव दुर्गतस्तेन तत्तुभ्यं दातु सयत्नोऽहम् । यथा व्याधितस्यौषधं पथ्यं किन्तु नीरुजस्य कृते औषधस्य प्रयोजनं न विद्यते तथा ईश्वरे धनं मा प्रपच्छ इति मे मतिः । अन्यच्च दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः ॥ ६ ॥ तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्णकङ्कणं गृहाण । ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतो लोभात्सरःस्नातुं प्रविशति तावन्पङ्के निमग्न पलायितुमक्षमः । पङ्के पतितं दृष्ट्वा व्याघ्रोऽवदत् " अहह महापङ्के पतितोऽसि अतस्त्वामहमुत्थापयामि । " इत्युक्त्वा शनैः शनैरुपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतःसःपान्थोऽचिन्तय श् मया भद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वासःकृतः सर्वान् गुणानतीत्य स्वभावो मूि वर्तते ।